‘स्मृति’ के प्रमात्व का दार्शनिक अध्ययन

(प्राचीन न्याय एवं नव्य न्याय दर्शन के विशेष संदर्भ में)

राँची विश्वविद्यालय, राँची

दर्शनशास्त्र विभाग (मानविकी संकाय) में पीएच.डी उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रस्ताव

2025

शोध निर्देशिका

शोधार्थी

डॉ. पुष्पा सिंह (Dr. Pushpa Singh)
सह प्राध्यापक, दर्शनशास्त्र विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची

देबश्री मण्डल (DEBASREE MONDAL)
UGC NET
दर्शनशास्त्र विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची

1. परिचय (Introduction):

हमारे जीवन में ज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि ज्ञान आत्मा का गुण माना जाता है। सृष्टि के आदिकाल से ही मनुष्य जिज्ञासु रहा है। जानने का विषय केवल मूर्त ही नहीं अमूर्त विषय भी हैं। साधरण मनुष्य मूर्त विषय जैसे: क्षिति, अप, तेज, वायु, मन और अमूर्त विषय जैसे: आकाश, दिक्, काल, आत्मा आदि के बारे में सोचते हैं, लेकिन मूर्त, अमूर्त विषय का गूढ़ ज्ञान दार्शनिकों के विचार का विषय है। भारतीय दर्शन में 'ज्ञान' शब्द का अर्थ यथार्थ और अयथार्थ दोनों है। भारतीय दर्शन में 'प्रमा' शब्द का प्रयोग यथार्थ अनुभव या यथार्थ ज्ञान के अर्थ में किया जाता है और जो ज्ञान अयथार्थ होता है उसे भ्रमज्ञान कहते हैं। 'प्र'-उपसर्ग और 'मा' धातु से प्रमा शब्द उत्पन्न हुआ, जिसमे 'प्र'-उपसर्ग का अर्थ है प्रतिभाशाली और 'मा' धातु का अर्थ है ज्ञान, अर्थात् 'प्रमा' शब्द का अर्थ 'यथार्थ ज्ञान' या 'यथार्थ अनुभव' है। भारतीय दर्शन में ज्ञान के साथ-साथ 'स्मृति' का भी विशेष महत्व है क्योंकि ज्ञान या बुद्दि दो प्रकार के होते हैं - अनुभव और स्मृति। अन्नंभट्ट ने तर्कसंग्रह में कहा है, "संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृति:" अर्थात् जो ज्ञान केवल संस्कार से उत्पन्न होता है उसे 'स्मृति' कहा जाता है। "तद्भिन्नं ज्ञानमनुभव:" अर्थात् स्मृति से भिन्न ज्ञान को 'अनुभव' कहते हैं। 'अनुभव' शब्द का अर्थ है "प्रमाणव्यापारादनंतरं भवति यः सोहभावः"। अर्थात् प्रमाण के तुरंत बाद जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वही अनुभव है। यह अनुभव दो प्रकार का होता है- यथार्थ और अयथार्थ। तर्कसंग्रह में अन्नम्भट्ट ने यथार्थ अनुभव का लक्षण दिया है, "तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थः" अर्थात् जिस पदार्थ में जो धर्म है, यदि उसी पदार्थ की उसी प्रकार के रुप में अनुभव होता है तो उसे 'यथार्थ अनुभव' कहा जाता है। इस यथार्थ अनुभव को न्याय वैशेषिक दर्शन में 'प्रमा' कहा जाता है। भारतीय दर्शन में 'स्मृति' को लेकर बहुत चर्चा हुई है। स्मृति में प्रमात्व को लेकर बहुत ही आलोचना हुई है, जिसमें पक्ष-विपक्ष ने अपने-अपने विचार दिए हैं। प्राचीन नैयायिक, कुछ नव्य नैयायिक और अद्वैतवेदान्ती धर्मराजाध्वरीन्द्र स्मृति को प्रमा के रुप में नहीं मानते हैं, लेकिन नव्य नैयायिक विश्वनाथ, वेदांती बेंकटनाथ और रामाद्वय स्मृति को

प्रमा के रुप में मानते हैं। इस आलोचना में आपत्ति और उसके सम्भावित उत्तर तथा भारतीय दर्शन में अद्वैतवेदान्ती धर्मराजाध्वरीन्द्र, प्राचीन न्याय और नव्य नैयायिक विश्वनाथ आदि मतों की चर्चा प्रमुख विषय के रुप में प्रस्तुत किया गया है।

2. अनुसंधान का विषय (State of Art):

भारतीय दर्शन में लगभग सभी ने प्रमा या सही ज्ञान के अस्तित्व को स्वीकार किया है। यह ज्ञान पदार्थ और चेतना के विभाजन को संभव बनाता है। ज्ञान अन्य प्रानियों से मनुष्य को उच्च आसन प्राप्त करवाते हैं। जैसे प्रकाश हमें जगत् को प्रकट करता है, वैसे ही ज्ञान हमें जगत् को जानने में मदद करता है। इसलिए हममें से कोई भी ज्ञान का अस्तित्व को नकार नहीं सकता क्योंकि इनकार करना हो तो ज्ञान की सहायता से करना होगा जिसका अर्थ है ज्ञान के अस्तित्व को एक अलग तरीके से स्वीकार करना। नव्य-नैयायिक अन्न अन्नम्भट्ट ने अपने तर्कसंग्रह ग्रंथ में ज्ञान को सभी उपयोगों के कारण के रूप में स्वीकार किया है (सर्वव्यवहारहेतुर्गुणो बुद्धिर्ज्ञानम्)। सिद्धांतकारों का कहना है कि सत्य या तत्त्व को सही ज्ञान की मदद से जानने से मोक्ष या मुक्ति संभव है। लेकिन भले ही ज्ञान का अस्तित्व सब दार्शनिकों मानते है, लेकिन ज्ञान की प्रकृति के बारे में सब भिन्न- भिन्न सिद्धांत देते हैं। भारतीय दर्शन में यथार्थ अनुभव को 'प्रमा' कहा गया है। वस्तु जिस रुप में है उसी रुप में अनुभव करना प्रमा है। जैसे रस्सी को रस्सी के रुप में जानना प्रमा है और प्रमा स्मृति से भिन्न ज्ञान है।

नव्य नैयायिक गंगेशोपाध्याय तत्वचिंतामणि ग्रंथ में प्रमा का लक्षण दिया -"यत्र यदस्ति तत्र तस्यानुभवः प्रमा। तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो वा"। केशव मिश्र तर्कभाषा ग्रंथ में प्रमा का लक्षण दिया "यथार्थानुभवः प्रमा"। अद्वैतवेदांती धर्मराजाध्वरीन्द्र वेदांतपरिभाषा में प्रमा के लक्षणों के बारे में कहते हैं, "प्रमात्वमनधिगतावाधितार्थ विषयक-ज्ञानत्वम्। अर्थात् ज्ञान जो किसी भी ज्ञान से बाधित नहीं होता है और जो ज्ञान पहले से ज्ञात नहीं है, वह प्रमा है। यदि प्रमा के लक्षण इस प्रकार हो तो स्मृति को प्रमा नहीं

कहा जा सकता क्योंकि स्मृति ज्ञान ज्ञाता को किसी नए विषय से परिचित नहीं कराता है, संस्कार से पहले जो रूप मौजूद हैं वे केवल स्मृति में उत्पन्न होते हैं, जो स्मृति में नहीं है वह स्मृति ज्ञान में तैरता हुआ प्रतीत नहीं होता है। केशव मिश्र ने अपने ग्रन्थ तर्कभाषा में कहा है, 'ज्ञात विषयक ज्ञान स्मृति है'। नव-नैयायिक अन्नम्भट्ट ने अपने तर्कसंग्रह ग्रंथ में स्मृति का लक्षण दिया "संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृति:" अर्थात् जो ज्ञान केवल संस्कार से उत्पन्न होता है उसी को स्मृति कहते हैं। जब हम किसी चीज का अनुभव करते हैं तो वह मन पर एक छाप छोड़ती है और बाद में उसे स्मृति बनने में मदद करती है, इस छाप को संस्कार कहते हैं। संस्कार तीन प्रकार के होते हैंः वेग, भावना और स्थितिस्थापक। अन्नम्भट्ट ने संस्कार शब्द का प्रयोग भावना नामक संस्कार के अर्थ में किया है क्योंकि भावना संस्कार आत्मा में निवास करता है, वेग और स्थितिस्थापक संस्कार आत्मा में नहीं रहता है। तर्कसंग्रह में अन्नंभट्ट भावना प्रसंग के बारे में कहते हैं, "अनुभवजन्या स्मृतिहेतुर्भावना"। अर्थात् जो अनुभूति से उत्पन्न होता है और स्मृति का कारण बनता है, उसे भावना कहते हैं। भावना नामक संस्कार द्वारा जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह स्मृति है। "संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृति:" अर्थात् स्मृति का लक्षण में उक्त चिन्ह से संबंधित प्रत्येक पद का काफी महत्व है। परिणामस्वरूप, मैं अपने शोध प्रबंध में स्मृति के उक्त संकेतों के प्रत्येक पद की वैधता का व्याख्या करूँगी। यदि यह लक्षण में से जुड़े ज्ञान शब्द नहीं होता, तो स्मृति का लक्षण होता जो संस्कार से उत्पन्न होता है वह स्मृति है। इस लक्षण मानने से अतिव्याप्ति दोष होगा क्योंकि संस्कारजन्यं संस्कार ध्वंस मे संस्कार जनंत्व है। इस अतिव्याप्ति से बचने के लिए स्मृति का लक्षण में विशेषण 'ज्ञानत्व' डाला गया है। संस्कार ध्वंस में संस्कार जनंत्व है लेकिन ज्ञानत्व के अभाव से अतिव्याप्ति नहीं होती। फिर 'संस्कारजन्यं' शब्द जो लक्षण का अंश है, वह भी बहुत महत्वपूर्ण है। यदि 'संस्कारजन्यं' शब्द नहीं होता तो लक्षण का अर्थ 'ज्ञान ही स्मृति' होता। इस लक्षण को मानने से घड़ा, कापड़ा आदि में ज्ञानत्व होने के कारण अतिव्याप्ति दोष होगा। इस अतिव्याप्ति को रोकने के लिए स्मृति का लक्षण में विशेषण 'संस्कारजन्यत्व' डाला गया है क्योंकि घटादि प्रत्यक्ष ज्ञान इन्द्रियों जन्यं, संस्कार जनं नहीं। फलत: यदि उसमें ज्ञानत्व हो लेकिन 'संस्कारजन्यं'

नहीं इसीलिए दोष नहीं होगा। यदि स्मृति लक्षण में 'मात्र' शब्द न हो तो लक्षण होगा 'जो ज्ञान संस्कार से उत्पन्न होती है वह स्मृति है'। यदि यह लक्षण है तो प्रत्यभिज्ञा में अतिव्याप्ति होगी क्योंकि प्रत्यभिज्ञा संस्कार से भी उत्पन्न होता है और ज्ञान का एक रूप भी है। फलस्वरूप प्रत्यभिज्ञा में स्मृति लक्षणों की अतिव्याप्ति होती है। इस अतिव्याप्ति से बचने के लिए लक्षण में 'मात्र' पद दिया गया है क्योंकि प्रत्यभिज्ञा 'संस्कारजन्यं' है, लेकिन केवल 'संस्कारजन्यं' नहीं है, यहाँ इन्द्रियादि-कारण की भी आवश्यकता है। अब यह जानना आवश्यक है कि प्रत्यभिज्ञा का अर्थ क्या है। जो पहले देखा जा चुका है उसका संस्कार मन में बना रहता है, परन्तु जब बाद में विषय का पुनः प्रत्यक्ष होता है और यदि पिछले संस्कार का अभिज्ञान होता है, तो उत्पन्न संस्कार के साथ पुनः प्रत्यक्ष को प्रत्यभिज्ञा कहा जाता है। उदाहरण के लिए, जब मैंने देवदत्त को पहली बार दिल्ली में देखा, तो मुझे 'अयं देवदत्त:' का बोध हुआ और उसका एक संस्कार मेरे मन में आया। परन्तु बाद में कोलकाता में फिर जब देवदत्त को देखा, तो दिल्ली के प्रत्यक्ष ज्ञान स्मृति के रुप में जाग्रत होती है 'सोऽयं देवदत्तः' - ऐसा ज्ञान प्रत्यभिज्ञा है। इस ज्ञान के मूल में जैसे संस्कार कारण है वैसे ही चक्षु इन्द्रिय भी कारण है। इसलिए प्रत्यभिज्ञा संस्कारजन्यं है लेकिन स्मृति नहीं है। मात्र शब्दों के सामान्य या पारंपरिक अर्थ को नहीं हुए, बल्कि पारिभाषिक अर्थ लेते हुए, मात्र पद के द्वारा बाहरी इन्द्रिय बहिष्कार किया गया है क्योंकि स्मृति केलिए बाहरी इन्द्रीय की आवश्यकता नहीं होती है। मात्र शब्दों द्वारा बाहरी इंद्रियों का बहिष्कार करने से प्रत्यभिज्ञा में स्मृति का अतिव्याप्ति नहीं हुआ। स्मृति दो प्रकार की होती है- यथार्थ स्मृति, अयथार्थ स्मृति। यदि स्मृति का कारण यथार्थ अनुभव है तो वह स्मृति यथार्थ है। जैसे यथार्थ अनुभव का लक्षण "तद्वति तत्प्रकारकः" किया गया था उसी प्रकार "तद्वति तत्प्रकारकस्मृतिः" को यथार्थ स्मृति का लक्षण माना जा सकता है। अयथार्थ अनुभव से उत्पन्न होने वाली स्मृति अयथार्थ स्मृति होती है। जैसे अयथार्थ अनुभव का लक्षण "तदभाववति तत्प्रकारकः" किया गया था उसी प्रकार "तदभाववति तत्प्रकारकस्मृतिः" को अयथार्थस्मृति का लक्षण स्वीकार किया जा सकता है।

स्मृति भिन्न ज्ञान को अनुभव कहते हैं। अन्नम्भट्ट अपने तर्कसंग्रह ग्रंथ में कहते हैं, "तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थ:"। अर्थात् जो पदार्थ जिस धर्म विशिष्ट है उस पदार्थ को उसी विशेषता के साथ अनुभव करना यथार्थ अनुभव है और यथार्थ अनुभव ही प्रमा है। लेकिन स्मृति अनुभव से भिन्न स्तर का ज्ञान है। अनुभूति से जो संस्कार उत्पन्न होता है उस संस्कार से जो स्मृति उत्पन्न होता है वह अनुभूति अधीन होता है और अनुभूति अधीन स्मृति अनुभूति से भिन्न स्तर का ज्ञान होता है। अर्थात् अनुभूति जिसको हम अनुभव बोलते हैं वही यथार्थ ज्ञान हैं। स्मृति अनुभव के अधीन होने का कारण यह यथार्थ ज्ञान नहीं हैं। इसीलिए स्मृति अनुभव से भिन्न स्तर का ज्ञान हैं। विश्वनाथ भाषापरिच्छेद ग्रंथ में ज्ञान या बुद्धि को दो (अनुभूति, स्मृति) में बांटते हुए बताया "बुद्धिस्त्त द्विविधा मता अनुभूतिः स्मृतिश्च स्यात्"। विश्वनाथ जी ने प्रमा का स्वरूप की व्याख्या करने के समय कहां है कि अबाधित विषय के रूप में जब स्मृति ज्ञान होता है तब यही ज्ञान प्रमा कहलाता है। प्राचीन न्याय में स्मृति ज्ञात विषयक होने का कारण प्रमा से अलग रखा गया है, स्मृति प्रमा नहीं है क्योंकि प्रत्यक्षादि प्रमा के तरह स्मृति का कोई करण नहीं है। लेकिन विश्वनाथ जी और नव्य नैयायिक यह बात स्वीकार नहीं करते हैं। विश्वनाथ जी ने सिद्धांत मुक्तावली में कहा है - "अथैवं स्मृतेरपि प्रमात्वं स्यात्। ततःकिमिति चेत् तथा सति तत्करणस्यापि प्रमाणन्तरत्वं स्यादिति चेन्न। यथार्थानुभवकरणस्यैव प्रमाणत्वेव विवक्षितत्वात्।" अर्थात् स्मृति को प्रमा मान भी लेते है तो फिर भी ऐसा कोई नियम नहीं है कि स्मृति के करण को स्वीकार करना पड़े क्योंकि उन्होंने प्रमा के करण नहीं मान के यथार्थ अनुभव का करण को प्रमा माने है। उन्होंने कहा कि यद्यपि स्मृति प्रमा मानते हुए भी स्मृति अनुभव से भिन्न स्तर का ज्ञान है, स्मृति का करण को (प्रत्यक्ष, अनुमान आदि जैसे स्वतंत्र) प्रमाण नहीं कहा जा सकता।

प्राचीन न्यायविदों में से किसी ने भी स्मृति को प्रमा के रूप में स्वीकार नहीं किया। प्राचीन नैयायिक उदयनाचार्य न्यायकुसुमांजलि ग्रंथ के चौथे स्तवक के पहले श्लोक में कहते हैं, "यथार्थ अनुभवः प्रमा"।

भले ही अबाधित विषय से उत्पन्न स्मृति ज्ञान सटीक है, फिर भी वह प्रमा नहीं है क्योंकि यह अनुभव नहीं है। उद्द्योतकर ‘न्यायवार्त्तिक’ में और प्रख्यात टीकाकार वाचस्पति मिश्र ने अपनी ‘न्यायवार्त्तिकतात्पर्य टीका’ में स्मृति भिन्न यथार्थ ज्ञान को प्रमा कहा है। अर्थात् उनके अनुसार स्मृति यथार्थ होने पर भी प्रमा शब्द निरुपित नहीं होती। सांख्य, मीमांसा आदि दर्शनों में स्मृति को प्रमा का दर्जा नहीं दिया गया है। प्राचीन मीमांसक प्रभाकर ने स्मृति का प्रमा के रूप में स्वीकार नहीं किया।

प्राचीन नैयायिकों जो स्मृति को प्रमा के रुप में नहीं मानते हैं, उनका तर्क है कि जिस प्रकार प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमा के स्वतंत्र प्रमाण जैसे प्रत्यक्ष, अनुमान आदि होते हैं, उसी प्रकार स्मृति के स्वतंत्र प्रमाणों को भी स्वीकार किया जाना चाहिए। लेकिन स्मृति के लिए स्वतंत्र प्रमाण को स्वीकार करेंगे तो प्रमाण पांच हो जाएगा, तब न्याय सूत्रकार के साथ विरोध होगा क्योंकि न्यायसूत्रकार चार प्रकार के प्रमा को स्वीकार करते हैं - प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति, शाब्द और उनके प्रमाण चार हैं (जो प्रमा का करण) - प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द । इस प्रकार प्राचीन दार्शनिकों ने स्मृति से भिन्न यथार्थ अनुभूति को प्रमा और उसकी करण को प्रमाण कहकर स्मृति का प्रमात्व का खण्डन किया।

स्मृति प्रमा है या नहीं यह न केवल न्याय, मीमांसा दर्शन तक ही सीमित है बल्कि वेदांतिक आचार्यों के बीच भी इस मामले पर व्यापक असहमति है। बेंकट अपने न्यायपरिशुद्धि में कहते हैं, “यथावस्थित व्यावहारानुगुनं ज्ञानम् प्रमा”। अर्थात् जो ज्ञान उचित उपयोग के लिए अनुकूल है, वह प्रमा है। यहाँ ज्ञान शब्द से उन्होंने केवल अनुभव ही नहीं स्मृति और अनुभूति दोनों ज्ञान को सामझाए हैं, इसी उद्देश्य से उन्होंने अनुभव पद को प्रयोग नहीं करके ज्ञान पद का प्रयोग किया। फलस्वरूप उनके अनुसार स्मृति को प्रमा कहा गया है। लक्षण में ‘उचित’ पदनाम के कारण भ्रम या संशय को प्रमा नहीं कहा जाता है। भ्रम या संदेह कभी भी यथार्थ उपयोग के लिए अनुकूल नहीं होता बल्कि हमेशा प्रतिकूल होता है।

रामानुज सम्प्रदाय के अनुसार यदि ज्ञान उपयोग के अनुकूल न हो, भले ही वह ज्ञान यथार्थ ही क्यों न हो, वह प्रमा नहीं होगा। इसके लिए उक्त लक्षण में 'अनुगुनं' शब्द का अवतरण हुआ है क्योंकि काल, अदृश्य आदि वस्तुओं के सामान्य कारण उपयोग के अनुकूल हैं पर ज्ञान नहीं और इसलिए प्रमा नहीं। रामानुज के अनुसार कोई भी ज्ञान भ्रम नहीं होती। उनके अनुसार सभी ज्ञान सत्य और यथार्थ है।

स्मृति को प्रमा नहीं कहा जा सकता है क्योंकि प्रमा को पहले अज्ञात विषय से उत्पन्न होना चाहिए और स्मृति हमेशा एक पूर्व ज्ञात विषय से उत्पन्न होती है - धर्मराजाध्वरीन्द्र के विचार को वेदांती बेंकटनाथ और रामाद्वय ने अपने वेदांतकौमुदी में स्वीकार नहीं किया है। धर्मराजाध्वरीन्द्र के विरुद्ध आपत्ति यह है कि यदि अज्ञात विषय को जानना प्रमा है तो ज्ञान का धारावाहिक प्रक्रिया में दूसरे क्षण में जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे प्रमा नहीं कह सकते है क्योंकि प्रथम क्षण ज्ञान है लेकिन दूसरे क्षण तो अधिगत या ज्ञात हो जाता है। अर्थात् दूसरे क्षण तो प्रथम क्षण का स्मृति ज्ञान है। ऐसी आपत्तियों के उत्तर में धर्मराजाध्वरीन्द्र कहते हैं कि प्रमा ज्ञान के लक्षण के लिए अनधिगत शब्द का प्रयोग किया है, जिसका तात्पर्य यह है कि जो ज्ञान पूर्वज्ञात विषय से उत्पन्न होता है उसे अधिगत ज्ञान कहते है उसी से भिन्न ज्ञान अनधिगत है और अनधिगत ज्ञान ही प्रमा है। स्मृति की प्रकृति यह है कि यह पूर्व ज्ञात विषय से उत्पन्न होती है। किसी भी वस्तु को बिना पूर्व ज्ञान के स्मरण नहीं किया जा सकता। लेकिन प्रत्यक्ष स्थल के जगह ऐसा कोई नियम नहीं है। एक ही विषय का प्रथम, दूसरा, तीसरा आदि प्रत्यक्ष ज्ञान के समय दूसरा, तीसरा प्रत्यक्ष ज्ञात विषय, प्रथम क्षण विषय से उत्पन्न होता है, लेकिन पहला प्रत्यक्ष ज्ञान ज्ञाता को अज्ञात अर्थात् नया वस्तु से परिचित कराता है। यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रत्यक्ष का प्रकृति, स्मृति का प्रकृति के अनुरुप होगा, जैसे ज्ञात वस्तु से उत्पन्न होना प्रत्यक्ष का प्रकृति और ज्ञात वस्तु से स्मृति उत्पन्न होना अनुरुप नहीं है।

प्राचीन दार्शनिक जयंत भट्ट ने कहा है कि अबाधित ज्ञान ही प्रमा है, जो ज्ञान किसी भी ज्ञान से बाधित नहीं होती है। उन्होंने यह भी कहा कि अगृहीतग्राही(नया ज्ञान) प्रत्यक्ष रुप गृहीतग्राही प्रत्यक्ष का

विषय कभी भी बाधित नहीं देखा जाता है, इसलिए यह प्रमा के रूप में स्वीकार किया गया। परन्तु इस प्रसंग में एक प्रश्न उठ सकता है कि यदि प्रत्यक्ष गृहीतग्राही होने पर प्रमा है तो स्मृति को प्रमा क्यों नहीं कहा जा सकता? इस तरह की आशंकाओं के जवाब में जयंत भट्ट कहते हैं कि स्मृति प्रमा इसलिए नहीं है की यह गृहीतग्राही है। वास्तव में स्मृति को अप्रमा कहा जाता है क्योंकि स्मृति के विषय स्मृति के समय स्मरण करने वाले के सामने उपस्थित नहीं होती है। लेकिन गृहीतग्राही प्रत्यक्ष के लिए ज्ञाता का सम्मुख में विषय मौजूद रहता है। यदि स्मृति का विषय स्मृति के समय स्मरण करने वाले के सामने उपस्थित होता तो उसे स्मृति नहीं कहके प्रत्यक्ष बोलना पड़ता।

यहाँ एक आपत्ति की जा सकती है कि स्मृति अप्रमा है क्योंकि स्मरणकर्ता के सामने स्मृति की सामग्री अनुपस्थित है, तो क्या अनुपस्थित विषय के बारे में हमारा अनुमान भी अप्रमा कहलाता है? इस तरह की आशंकाओं के जवाब में, जयंत भट्ट कहते हैं, भले ही हमारा अनुमित विषय अर्थात् साध्य या धर्म अनुमान कर्ता के निकट अनुपस्थित फिर भी साध्य या धर्म जिस धर्मी या पक्ष में रहते है उस पक्ष ही उपस्थित रहता है। पक्ष में साध्यधर्म का साधन अनुमान है इसलिए पक्ष को छोड़कर अनुमान असंभव है। इस मामले में, अतीत या भविष्य के बारे में जो अनुमान है वही स्मृति की तरह पूरी तरह से विषय निरपेक्ष नहीं कहा जा सकता है। इसीलिए अनुमान को प्रमा कहा जाता है। जयंत भट्ट के अनुसार यदि किसी शब्द का प्रयोग किसी वस्तु के अर्थ या ज्ञान की अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए किया जाता है, तो उस शब्द से प्राप्त ज्ञान भी अर्थजन्य होता है। अर्थात् उन्होंने स्मृति और अनुमान के बीच के अंतर को विभिन्न तर्कों की सहायता से यह सिद्ध किया है कि अतीत, अनुमान, शब्दज्ञान आदि शब्दजन्य हैं।

3. अनुसंधान की समस्या (Research Problem):

यदि प्रमा का विषय पूर्व कल्पित नहीं है तो उस विषय पर प्रमा प्राप्त करना संभव नहीं है। अर्थात् प्रमा का पूर्वभाव के रूप में स्मृति ज्ञान का महत्व अधिक है। फिर भी स्मृति प्रमा नहीं है अथवा स्मृति में प्रमात्व स्वीकार नहीं किया गया है। इसलिए इस विषय पर विश्लेषण करने का आवश्यकता है।

4.अनुसंधान का उद्देश्य (Research Objectives):

इस अनुसंधान का उद्देश्य है-

- भारतीय ज्ञान परंपरा को समझना, मुख्य रूप से न्यायमीमांसा को गहराई से समझने का प्रयास करना।
- दुनिया भर के लोग आनंद के साथ जीवन जीने का प्रयास कर रहे हैं। दु:ख से मुक्त होकर आत्मा को आनंद देने का उपाय भारतीय ज्ञानमीमांसा में प्राचीन काल से ही लिखा गया है। न्याय ज्ञानमीमांसा शास्त्र के अनुसार षोड्श पदार्थ के यथार्थ ज्ञान से ही आत्मा दु:ख से मुक्त होकर अपवर्ग प्राप्त करता है। अर्थात् दु:ख से मुक्ति और आनंद से जीवन जीने के लिए यथार्थ ज्ञान आवश्यक है। मुख्य रूप से न्याय ज्ञानमीमांसा में दु:ख से मुक्ति और आनंद की प्राप्ति के लिए मार्ग निर्देशित है। "निधाय हृदि विश्वेशं विधाय गुरुवंदनम्। बालानां सुखबोधाय क्रियते तर्कसंग्रहः"।।
- भारतीय ज्ञान मीमांसा में प्रमाण के विभिन्न प्रकार के बारे में उल्लेख किया गया है जो ज्ञान भी है और साधन भी। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द को समझना, भारतीय ज्ञान परंपरा के लिए आवश्यक है। वर्तमान समय में पाश्चात्य ज्ञान परंपरा का आदत अत्यधिक हो रहा है। भारतीय संस्कृति के साथ-साथ भारतीय ज्ञानमीमांसा को समझना और आगे की पीढ़ी को भी शिक्षा देना आवश्यक है।
- भारतीय ज्ञानमीमांसों को आगे बढ़ाने के लिए यू.जी.सी. ने भी सभी विषय के साथ 'भारतीय ज्ञान परंपरा' को पढ़ना आवश्यक कर दिया है। इसका उद्देश्य भारतीय ज्ञान परंपरा को अंतरराष्ट्रीय स्तर तक पहुंचना

है, जिससे सभी लोग भारतीय ज्ञान परंपरा का लाभ लें सके। इसलिए भारतीय ज्ञान मीमांसा की चर्चा करके बेहतर ज्ञान प्राप्त करना हमारा उद्देश्य है।

- दुनिया में सबसे महत्वपूर्ण चीज ज्ञान है। ज्ञान के बिना कुछ भी संभव नहीं है। इसीलिए ज्ञान की परिभाषा को जानना आवश्यक है। सत्य ज्ञान और मिथ्या ज्ञान अर्थात् भारतीय ज्ञानमीमांसा के माध्यम से यथार्थ ज्ञान और अयथार्थ ज्ञान की परिभाषा को जानना इस अनुसंधान का उद्देश्य है। भारतीय ज्ञानमीमांसा में वर्णित प्रमा, प्रमाण, प्रमेय, प्रमाता आदि को गहराई से अध्ययन करके यथार्थ ज्ञान को प्राप्त करना इस अनुसंधान का उद्देश्य है।

5.परिकल्पना (Research Hypothesis) :

नैयायिकों ने स्मृति का लक्षण दिया है- “संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृति:” अर्थात् केवल संस्कार से जो ज्ञान उपन्न होता है वही ‘स्मृति’ है। साथ ही उन्होंने अनुभव का लक्षण दिया है- “तद्भिन्नं ज्ञानमनुभवः” अर्थात् स्मृति से भिन्न प्रकार का ज्ञान अनुभव है। अनुभव दो प्रकार का है- यथार्थ और अयथार्थ। यथार्थ अनुभव में प्रमात्व माना गया है, स्मृति में प्रमात्व नहीं माना गया हैं। जिस प्रकार यथार्थ अनुभव को प्रमा कहा इस प्रकार यथार्थ स्मृति को भी प्रमा कहना चाहिए। इस अनुसंधान का परिकल्पना है “यथार्थ स्मृति में प्रमात्व स्वीकार” । न्याय का पद्धति आन्वीक्षिकी जिसका अर्थ है अन्वेषण का विज्ञान, आलोचनात्मक चिंतन या दार्शनिक अन्वेषण, यह विचारों और अवधारणाओं को व्यवस्थित करते है।

6.अनुसंधान की पद्धति (Research Methodology):

यह अनुसंधान भारतीय ज्ञान मीमांसा दर्शन होने का कारण इसका पद्धति होगा ‘गुणात्मक पद्धति’, जिसमें ‘प्रमा’ की गुणवत्ता का परीक्षण किया जाएगा। प्रमा के स्पष्टीकरण के लिए ‘वर्णनात्मक पद्धति’ का सहारा लिया जाएगा। इस अनुसंधान में भारतीय ज्ञान मीमांसा पद्धति ‘आन्वीक्षिकी विधि’ का प्रयोग किया

जाएगा। साथ ही दार्शनिक अध्ययन के लिए अन्य विधि जैसे- 'समीक्षात्मक', 'तुलनात्मक', 'आलोचनात्मक' तथा 'विश्लेषणात्मक' पद्धति का प्रयोग किया जाएगा। यह अनुसंधान मुख्य रूप से एक शुद्ध और विशिष्ट होगा, अनुसंधान के सैद्धांतिक पहलू के साथ-साथ व्यावहारिक पहलू पर भी विचार किया जाएगा।

7.अनुसंधान सम्बन्धित तथ्य संकलन (Data Collection):

यह अनुसंधान भारतीय न्याय शास्त्र पर आधारित है। इस अनुसंधान का तथ्य संकलन के लिए भारतीय दर्शन का मुख्य पाठ्य पुस्तक का सहारा लिया जाएगा। न्याय दर्शन का प्राथमिक पाठ्य पुस्तकों जैसे महर्षि गौतम का 'न्यायसूत्र', न्याय सूत्र के ऊपर लिखा गया वात्स्यायन का 'न्यायसूत्रभाष्य', न्यायसूत्र के ऊपर लिखा गया केशव मिश्रा का 'तर्कभाषा', विश्वनाथ का 'भाषापरिच्छेद', अन्नम्भट्ट का 'तर्कसंग्रह' आदि ग्रंथ का सहारा लिया जाएगा जो दर्शन शास्त्र विभाग और संस्कृत विभाग के अनेक पुस्तकालय में उपलब्ध होगा। यह प्राथमिक पाठ्यपुस्तक के साथ-साथ हिंदी व्याख्या सहित माध्यमिक पुस्तक, विशेष पुस्तकालय में जैसे की वाराणसी हिंदी यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, कोलकाता सेंट्रल लाइब्रेरी आदि में उपलब्ध है। इस विषय पर विशेषज्ञ से भी आलोचना किया जाएगा। जिस विद्वानों ने इस विषय पर ज्ञान प्राप्त किया उनसे विचार विमर्श किया जाएगा। इस विषय पर सेमिनार से भी तथ्य संकलन किया जाएगा।

8. अनुसंधान सम्बन्धित तथ्य विश्लेषण (Data Analysis):

तथ्य विश्लेषण की प्रक्रिया के लिए भारतीय ज्ञान मीमांसा का मूल पाठ्यक्रम से तत्वों का संगठन और मूल्यांकन किया जाएगा, फिर संक्षिप्त अवयव(अंश) के साथ विश्लेषण भी किया जाएगा। प्राचीन न्याय और नव्यन्याय का विभिन्न ग्रंथों से स्मृति, प्रमा, प्रमाण आदि का परिभाषा के साथ-साथ लक्षण दिया जाएगा। लक्षण में अतिव्याप्ति, अव्याप्ति दोष है कि नहीं यह भी परीक्षा किया जाएगा। भारतीय अन्य दर्शन

का ग्रंथ जैसे - भाट्टमीमांसा, प्रभाकर मीमांसा, बैदंती धर्मराजाध्वरीन्द्र आदि का दर्शन चिंता लेकर आलोचना किया जाएगा। इस प्रसंग में विभिन्न भारतीय दार्शनिक तथा व्याख्याकारों का सिद्धांतों को लिया जाएगा जो उपयुक्त तत्वों को सरल और सटीक बनाने में मदद करेंगे। इस प्रकार यह विश्लेषण मुख्य उपयोगी जानकारी लेने के पश्चात् निष्कर्ष देने में मेरी सहायता करेगा।

9. अनुसंधान का विषय वर्तमान में महत्व एवं प्रासंगिकता (The Importance and Relevance of this Research topic to the Present Life):

दुनिया में सबसे महत्वपूर्ण, कीमती चीज है ज्ञान, जिसका बिना कुछ संभव नहीं है और यह ज्ञान इस अनुसंधान का केंद्रीय विषय है। ज्ञान के माध्यम से जैसे आप अपने ऊपर विजय प्राप्त कर सकते हैं। इस तरह ज्ञान से ही दुनिया के ऊपर विजय प्राप्त करते हैं। भारतीय शास्त्र में ज्ञान की इतना गहराई से विश्लेषण किया गया है जो आज अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी चर्चा का विषय बन गया। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने सभी विश्वविद्यालय को यह सूचित किया है कि सभी विषय में भारतीय ज्ञान परंपरा को पढ़ना अनिवार्य है। जहां दुनिया भर में लोग परेशान का उपाय ढूंढ रहे हैं क्योंकि सब लोग आनंद के साथ जिंदगी जीना चाहते हैं, वहीं भारतीय ज्ञान मीमांसा में षोड्श पदार्थ का ज्ञान से अपवर्ग प्राप्त करने का उपाय बहुत ही प्राचीन काल से बताया गया है। तर्कसंग्रह ग्रंथ का मंगलाचरण में भी कहा गया है- बालकों के सुख बोध के लिए ए ग्रंथ लिखा जा रहा है। समय के साथ-साथ भारतीय ज्ञान मीमांसा को समझना आवश्यक है। इस शास्त्र में यथार्थ ज्ञान को ही प्रमाण कहा गया है, यह विचार का विषय है की वर्तमान में हम जिसको ज्ञान के रूप में जानते हैं वह यथार्थ ज्ञान या अयथार्थ ज्ञान।

10. वर्तमान ज्ञान में प्रस्तावित अनुसंधान का योगदान (Contribution to the Existing Knowledge):

न्याय दर्शन ने भारतीय ज्ञानमीमांसा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसका मुख्य उद्देश्य सही तर्क और विचारधारा के माध्यम से सत्य को प्राप्त करना है। न्याय दर्शन ने ज्ञान प्राप्ति के विभिन्न साधनों पर विस्तार से विचार किया है और सत्य की पहचान तथा अज्ञानता के निवारण पर विशेष ध्यान दिया है। न्याय दर्शन में चार प्रमुख प्रमाण माने गए हैं: प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शव्द। प्रत्यक्ष ज्ञान वह है जो इंद्रियों के माध्यम से सीधे प्राप्त होता है। यह ज्ञान का सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि यह अनुभवजन्य होता है और इसमें भ्रम की संभावना कम होती है। अनुमान ज्ञान वह है जो तर्क के आधार पर प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए, यदि हम धुआं देखते हैं, तो हम आग का अनुमान लगा सकते हैं। न्याय दर्शन में अनुमान का बहुत महत्व है और इसे तर्क की आधारशिल माना गया है। उपमान का अर्थ है सादृश्य के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करना। यह तब होता है जब हम किसी नई चीज़ को पहचानने के लिए किसी परिचित वस्तु से तुलना करते हैं। उदाहरण के लिए, अगर हमें पहले कभी जिराफ नहीं देखा है, तो हम उसकी तुलना ऊंट से कर सकते हैं और उसके बारे में समझ सकते हैं। शब्द प्रमाण का अर्थ है किसी ज्ञानी व्यक्ति के कथन से प्राप्त ज्ञान। इसमें गुरुओं, शास्त्रों, और अनुभवी व्यक्तियों द्वारा दी गई जानकारी को सत्य माना जाता है। न्याय दर्शन ने तर्क और वाद-विवाद की विधियों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि कौन सा तर्क सत्य की ओर ले जाएगा और कौन सा नहीं। न्याय में यह भी समझाया गया है कि अज्ञान (अविद्या) क्यों उत्पन्न होता है और इसे कैसे दूर किया जा सकता है। न्याय का मानना है कि सही ज्ञान ही व्यक्ति को अज्ञानता से मुक्त कर सकता है और इसे सही प्रमाण के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। न्याय दर्शन के इन सिद्धांतों ने आधुनिक तर्कशास्त्र, विज्ञान, और ज्ञानमीमांसा में भी अपना प्रभाव छोड़ा है। न्याय का विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण और सटीक तर्क की परंपरा आज के दार्शनिक और वैज्ञानिक

दृष्टिकोण के विकास में सहायक सिद्ध हुई है। न्याय दर्शन की यह ज्ञानमीमांसा सत्य को जानने की एक व्यवस्थित प्रक्रिया देती है, जो न केवल तर्कपूर्ण है, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में लागू की जा सकती है।

11. भविष्य में कार्य होने का संभावना (future work):

भविष्य में न्याय दर्शन की ज्ञानमीमांसा में स्मृति के क्षेत्र में कई शोध संभावनाएँ हैं, जो इसे आधुनिक ज्ञानमीमांसा और विज्ञान से जोड़ सकती हैं। न्याय दर्शन के चार प्रमाण—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द—को आज के विज्ञान और तर्कशास्त्र के संदर्भ में पुनःमूल्यांकित किया जा सकता है, जिससे साक्ष्य और सत्यापन की नई प्रणालियाँ विकसित की जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन लर्निंग में न्याय दर्शन के ज्ञानमीमांसा, तर्कशास्त्र का उपयोग करके निर्णय लेने और ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रियाओं को और अधिक सटीक बनाया जा सकता है। व्यक्तिगत और सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों का अध्ययन, जो प्रमाणों की निष्पक्षता को प्रभावित करता है, जिसमें भी न्याय दर्शन का योगदान महत्वपूर्ण हो सकता है साथ ही निष्पक्षता और सत्य की बेहतर समझ विकसित की जा सकती है। भविष्य में न्याय दर्शन के सिद्धांतों के आधार पर अन्य दार्शनिक परंपराओं, जैसे बौद्ध और जैन दर्शन, के साथ तुलनात्मक अध्ययन कर एक समग्र दृष्टिकोण विकसित किया जा सकता है। इस प्रकार, न्याय दर्शन की प्रमाण संबंधी परंपराएँ आधुनिक ज्ञानमीमांसा में नए दृष्टिकोण और नई दिशा प्रदान कर सकती हैं, जिससे वैशेषिक दर्शन में भी इसका प्रभाव और अधिक व्यापक हो सकता है।

12.संभावित अध्याय (Tentative Chapters):

भूमिका

प्रथम अध्याय	**:**	**भारतीय दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों में ‘स्मृति’ की अवधारणा**
द्वितीय अध्याय	**:**	**प्राचीन न्याय दर्शन में स्मृति की अवधारणा**
तृतीय अध्याय	**:**	**नव्य न्याय दर्शन में स्मृति की अवधारणा**
चतुर्थ अध्याय	**:**	**प्राचीन तथा नव्य न्याय दर्शन में ‘स्मृति’ का तुलनात्मक अध्ययन**
पंचम अध्याय	**:**	**स्मृति के प्रमात्व का ज्ञानमीमांसा के क्षेत्र में योगदान**

निष्कर्ष

सहायक ग्रन्थसूची

मिश्र, केशव. *तर्कभाषा*. आचार्य सुरेन्द्रदेव शास्त्री. चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2017.

मिश्र, केशव. *तर्कभाषा*. बदरीनाथ शुक्ल. मोतिलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1996.

भट्ट, अन्नम् . *तर्कसंग्रह*. कांशी राम सन्ध्या राठौर. मोतिलाल बनारसी दास, दिल्ली, 2007.

Chatterjee, Satischandra. *The Nyaya Theory of Knowledge*. University of Calcutta, Calcutta, 1978.

Gotama. *Nyaya Sutras*. M.M. Satisa Chandra Vidyabhusana. Motilal Banarsidass Publishers, Delhi, 1930.

सिन्हा, नीलिमा. *भारतीय ज्ञानमीमांसा*. मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 2004.

भट्ट, अन्नम्. *तर्कसंग्रह*. श्री नारायण चंद्र गोस्वामी अनुवाद, संस्कृत पुस्तक भंडार, कोलकाता, 2004.

उपाध्याय, गंगेश, *तत्वचिंतामणि*. श्री विश्वबंधु भट्टाचार्य अनुवाद. रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर, कोलकाता, 2000.

मिश्र, केशव. *तर्कभाषा*. (प्रथम खंड) श्री गंगाधर कर अनुवाद. यादवपुर विश्वविद्यालय, महाबोधि बुक एजेंसी, कोलकाता, 2013.

अध्वरिंद्र, धर्मराज. वेदांतपरिभाषा. श्रीमद् पंचानन भट्टाचार्य अनुवाद. संस्कृत पुस्तक भाण्डार, कोलकाता, 1948.

भट्टाचार्य, विश्वनाथ. भाषापरिच्छेद. पंचानन शास्त्री अनुवाद, संस्कृत पुस्तक भंडार, कोलकाता, 1371.

उदयनाचार्य, न्यायकुसुमंजलि. (प्रथम खंड) कोलकाता विश्वविद्यालय प्रकाशित, कोलकाता, 1939.

बेंकट, न्यायपरिशुद्धि. पंचानन भट्टाचार्य अनुवाद. संस्कृत पुस्तक भाण्डार, कोलकाता, 1983.

भट्ट, जयंत, न्यायमंजरी. रामकृष्ण मिशन संस्कृति संस्थान, कोलकाता, 2000.